मनुष्य बनो

जुलाई
१९८९

7/1989

वा० मू०
१२.००

श्रेष्ठ गति

शुभ संकल्प.

क्षमा.

प्रेम.

निष्काम कर्म.

ब्रह्मचर्य पालन.

संरक्षक

दयाल फकीरचन्दजी महाराज

मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य १५.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ।।

मनुष्य बनो

वर्ष ३७ | जुलाई १९८९ | अङ्क १०

सार शब्द

भली भई जो गुरु मिले,मिली ध्यान की युक्ति ।
ध्यान पाये ध्यान बने, जीते जी हुई मुक्ति ।१।
भली भई जो गुरु मिले, सर से टली बलाये ।
जैसा था वैसा भया, अब कुछ कहा न जाये ।२।
भली भये सतगुरु मिले, पर्दा दिया उठाये ।
भरम गये संकट मिटा, दुचित्ता गई नसाये ।३
भली भई गुरुदेव का, दरस परस व्यवहार ।
गुरु मेरे मैं गुरु का, मन नहीं मद अहंकार ।४।
भली भई गुरु संग भया, संग का लासा रंग ।
संग असंग का मरम लख, हो रहा संग असंग ।५।
भली भई गुरुदेव ने आन दिया उपदेश ।
नर जीवन का फल लहा ,मेटा विपत्ति क्लेश ।६।
राधास्वामी की दया समझ पड़ा गुरु ज्ञान ।
ज्ञान अज्ञान की जड़ कटी, सहज भया निर्वाण ।७।

॥ मनुष्य बनो ॥

मासिक सन्देश

परम सन्त परम मानव हजूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज !

मेरे परम प्रिय सत्संगियों !

राधास्वामी !

परमदयाल जी सहाई !

पिछले मासिक सन्देश में, मैंने आपको १२ मई तक की दौरे की सूचना दी थी। १५ मार्च से २५ मार्च तक हमारा निकट उत्तर प्रदेश का दौरा सम्पन्न हुआ। इस दौरे में हमने बनवारीपुर, खतौली, मुजफ्फरनगर, बुलन्दशहर, अलीगढ़, दयालनगर और जहांगीराबाद के केन्द्रों पर विशाल सत्संगों में शहरों तथा ग्रामों के हजारों सत्संगियों से सम्पर्क किया।

मुजफ्फरनगर के दौरे में मुण्डभर गाँव का सत्संग उल्लेखनीय है। इसी प्रकार बनवारीपुर के साथ-साथ बरना ग्राम का सत्संग भी उल्लेखनीय है। अतः इस दौरे के सम्बन्ध में हम बनवारीपुर और मुण्डभर के सत्संगों की संक्षिप्त सूचना देंगे।

बनवारीपुर में हर वर्ष की भाँति सैकड़ों सत्संगियों ने बड़े उत्साह से दो सत्संगों में भाग लिया। इन सत्संगों के

दौरान हमें बरना के श्री कृष्णदत्त ब्रह्मचारी की ओर से उनके एक विशाल सम्मेलन में सतसग देने का निमन्त्रण मिला। इस से पहले कि मैं आपको इस सम्मेलन के सम्बन्ध में सूचना दूं। श्री कृष्णदत्त ब्रह्मचारी के बारे में कुछ कहना आवश्यक है। मैं सबसे पहले श्री कृष्णदत्त ब्रह्मचारी को १९७० में मिला था मैं उस समय अमेरिका में पढ़ रहा था और कुछ दिनों के लिए भारत आया हुआ था। जब मैं अपने बहनोई स्वर्गीय डा० रमेशचन्द्र के घर पर देहली में ठहरा, तो उन्होंने मुझे बताया कि श्री कृष्णदत्त ब्रह्मचारी एक विचित्र व्यक्ति हैं और शाहदरा में उनका विशाल सभाओं में प्रवचन हो रहा है।

उन्होंने मुझे बताया कि कृष्णदत्त ब्रह्मचारी सोकर के समाधि की अवस्था में चले जाते हैं और उच्च कोटि का प्रवचन देते हैं। जहाँ तक मुझे याद है उनकी जीवनी के सम्बन्ध में सुनकर मैं बरनावा गाँव में भी गया और उसके बाद पता चला कि उनका प्रवचन कई दिनों से शाहदरा में चल रहा है।

श्री कृष्णदत्त ब्रह्मचारी एक गाँव में निर्धन परिवार में पैदा हुए। ८ या १० साल की आयु में पता चला कि जब वह बालक रात को सो जाता था तो घण्टों तक बोलता रहता था। उसके घर वाले काफी दिनो तक उसके इस बोलने से दुःखी हुए क्योंकि उनकी नींद खराब होती थी। बावजूद डाक्टर को दिखाने के कृष्णदत्त का रात को बड़बड़ाना समाप्त नहीं हुआ। एक दिन उनके पिता ने इसी बात पर उन्हें बहुत पीटा। कहते हैं कि वह घर से निकल पड़े और बरनावा के आस-पास किसी साधु के पास रहने लगे। एक रात को उस

साधु ने देखा कि जब कृष्णदत्त सीधे सो जाते थे उनके हाथ स्वयं ही जुड़ जाते थे और सिर हिलने लगता था। इस अवस्था में कृष्णदत्त वेदों के श्लोक बोलने लगते और संस्कृत में प्रवचन देने लगते। जाग्रत अवस्था में उनको इस बात का तनिक मात्र भी ज्ञान नहीं था। कुछ समय के बाद कृष्णदत्त ब्रह्मचारी इस योग की मुद्रा में हिन्दी में प्रवचन करने लगे और उनके प्रवचनों में प्राचीन काल के ऋषियों के सम्मेलनों के सम्बन्ध में व्याख्यापूर्ण उच्चकोटि के विचारों पर प्रवचन होते। उन प्रवचनों में उन्होंने यह भेद खोला कि हजारों वर्ष पूर्व कृष्णदत्त ब्रह्मचारी ही शृंगी ऋषि थे। उस जन्म में उन्होंने क्रोध के आवेश में किसी युवक को शाप देकर उसका जीवन समाप्त कर दिया था इससे उन्हें कलियुग में ऐसा चला मिला कि केवल सुषुप्त की अवस्था में उच्च योग को प्राप्त करके विशेषकर वेदो के ज्ञान का प्रचार करते हैं किन्तु जाग्रत अवस्था में वह बिल्कुल निरक्षर भट्टाचार्य हैं। यह बात बिल्कुल सत्य है कि उनके सुषुप्ति में दिये गये प्रवचनों में न ही केवल उच्च कोटि का वेदों का ज्ञान है जो लुप्त हो गयी है बल्कि उनमें आधुनिक विज्ञान के बारे में भी कई रहस्यो को खोल दिया गया है। २० वर्ष से भी अधिक समय से उनके प्रवचनों को रिकार्ड किया गया है और पुस्तकों के रूप में एक विशाल साहित्य प्रकाशित हो चुका है। उनके प्रवचनों के १३ वें पुष्प में अमेरिका के अन्तरिक्ष यानों के बारे में भविष्यवाणी भी की गई थी। और वह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। आश्चर्य की बात यह है कि इस समय भी जाग्रत अवस्था में श्री कृष्णदत्त ब्रह्मचारी पूर्णतया अशिक्षित हैं। उन्होंने पिछले कुछ वर्षों में हस्ताक्षर करना सीख लिया है।

अचेतन योग की अवस्था में दिये गए, एक प्रवचन में कृष्ण दत्त ब्रह्मचारी ने यह भी कहा है कि जब वह ५० वर्ष के हो जायेंगे तो उनको गुरू मिलेगा। उससे दीक्षा लेने के पश्चात चेतना अवस्था में भी उनको ज्ञान प्राप्त होगा। भारत में ही नहीं बल्कि इस समय विश्व भर में पूर्व जन्म के संस्कारों के गहरे प्रभाव का एक चमत्कारी नमूना कृष्णदत्त ब्रह्मचारी के व्यक्तित्व में है। अन्ध विश्वास के कारण हजारों लोग उन का प्रवचन सुनकर वाह, वाह करते हैं और उनको भेंट भी चढ़ाते हैं। हालाँकि सारा पैसा यज्ञों में ही खर्च किया जाता है किन्तु इस सम्बन्ध में जिस रहस्य को जानने की जरूरत है, उससे आम जनता नावाकिफ है।

मैंने आपको पहले भी बताया था कि अमेरिका में एक ऐसा अचेतन योग में बातें कहने वाला व्यक्ति एडगरकेसी हुआ है, जिसने अचेतन समाधि में जाकर हजारों लोगों के पूर्व जन्म बताये हैं, अनेक रोगों की चिकित्सा की है और पश्चिम को पूर्व जन्म कर्म के सिद्धान्त में विश्वास दिलाने के अलावा ओम और हरिओम के उच्चारण से समाधि लगाने की विधि भी बताई है। इस व्यक्ति ने अपने जीवन काल में अचेतन समाज में कई भविष्यवाणियाँ की हैं जो सत्य प्रमाणित हुई हैं। एडगर कैसी का १९४५ में देहान्त हो गया। उस पर अनेक पुस्तक लिखी गई हैं जिनमें से एक मेरी पुस्तक भी अमेरिका में छपी है। मैंने उस पुरुतक में एडगरकेसी के विचारों को पुर्नजन्म और कर्म के सिद्धान्तों और योग साधना के प्रभावों के आधार पर उसके विचित्र व्यक्तित्व की व्याख्या की है। एडगर ने भी अपने एक अचेतन समाधि के प्रवचन में कहा था कि उसका केवल अचेतन अवस्था में चमत्कारी अनुभव करता

चेतन अवस्था में उसका बोध न होना, उसके पूर्व जन्म के एक अपराध के कारण घटित हुआ है। एडगरकैसी के साहित्य की खोज के लिये अमेरिका में एक संस्था चल रही है जिसका नाम A. R. E. अर्थात ज्ञान और खोज की संस्था है। इसी संस्था ने परमदयाल जी महाराज को बार-बार अमेरिका बुलाया और उनके सत्संग सुने। इसी संस्था के अमेरिका के चुने हुए वैज्ञानिकों, डाक्टरों, बुद्धिजीवियों के ४० व्यक्तियों के शिष्ट मण्डल में १९६९ में दहली में परमदयाल जी महाराज से भेंट की और उनका सत्सग सुना। जब यह शिष्ट-मण्डल विश्व भर में सन्तों तथा तथा चमत्कारी व्यक्तियों से मिलने के बाद अमेरिका पहुँचा तो इस मण्डल के नेता एडगर कैसी के सुपुत्र श्री ह्यू लिन कैसी ने कहा कि परम दयाल जी महाराज ही सच्चे और उच्च कोटि के आध्यात्मिक सन्त थे।

मैं आपको यह सब सूचना इसलिए दे रहा हूं कि इस विज्ञान के युग में राधा स्वामी मत का मानवता धर्म का स्वरूप सभी धर्मों का आधार है और वैज्ञानिक है। आज पश्चिम में कर्म सिद्धान्त पुर्नजन्म और सुमिरण ध्यान भजन को अपनाया जा रहा है यही राधा स्वामी मत है, सनातनधर्म विकास की आखरी सीढ़ी है यही मानवता धर्म है। एडगर कैसी के साहित्य ने इस व्यापक धर्म को फैलाने में एक अद्वितीय योगदान दिया है। उसका कारण यह है कि अमेरिका वालों ने एडगर कैसी की अचेतन समाधि से तब लाभ उठाया जब उन्होंने एडगर कैसी से अचेतन अवस्था में कुछ प्रश्नों के उत्तर माँगे। इसके फलस्वरूप यह प्रमाणित हुआ कि अचेतन समाधि में एकाग्रता के कारण व्यक्ति का मन ब्रह्माण्डी मन से

जुड़ जाता है जिसके कारण चमत्कारी अनुभव होते हैं। परमदयाल जी महाराज ने यह प्रमाणित कर दिया कि चेतन अवस्था में भी मन की इस एकाग्रता से गुरु पर ध्यान लगाने से चमत्कारी अनुभव होते हैं। इस प्रकार मानवता धर्म या राधास्वामी मत व्यक्ति को चेतन अवस्था से परम चेतन अवस्था में ले जाता है यह तभी हो सकता है जब जिज्ञासु सत्गुरु को इष्ट बनाकर साधना करता है।

इन्हीं विचारों के कारण जब मैं पहली बार कृष्णदत्त ब्रह्मचारी को मिला, तो मैंने उनके शाहदरे के प्रवचन देने से पहले यह विचार दिया कि वह अपनी अचेतन समाधि में धर्म और राजनीति के बारे में अपने विचार व्यक्त करें। मेरे ऐसे निर्देश देने से एक दिन पहले कृष्णदत्त ब्रह्मचारी अचेतन अवस्था में योग पर प्रवचन दे रहे थे और उसमें उन्होंने कहा था कि वह दूसरे दिन योग की ही चर्चा करेंगे। किन्तु मेरे निर्देश के अनुसार उन्होंने धर्म और राजनीति के सम्बन्ध पर ही प्रवचन दिया। इससे यह सिद्ध हुआ कि कृष्ण दत्त ब्रह्मचारी के हजारों वर्षों के शृंगी ऋषि वाले संस्कारों को प्रेरित करके उनकी अचेतन सिद्धि-शक्ति का लाभ उठाया जा सकता है।

अमेरिका के एडगर केसी के साहित्य पर एक नई संस्था बन गई है और उसकी खोज के आधार पर ईसाई धर्म में भी कार्य सिद्धान्त और पुर्नजन्म को वैज्ञानिक ढंग से स्वीकार किया जा रहा है। इसी प्रकार एडगर केसी के विपुल साहित्य के प्रकाशन से भारतीय योग शैली को भी पश्चिम में अपनाया जा रहा है। इसके फलस्वरूप इसाई धर्म और सनातन धर्म का समन्वय हो रहा है इस प्रकार पूर्वी और पश्चिमी संस्कृति

की मिलौनी से एक व्यापक मानववाद उभर रहा है। इसी प्रकार यदि हम कृष्ण दत्त ब्रह्मचारी के अचेतन समाधि से प्रेरित वैदिक और सनातन धर्म के मूल विचारों की खोज करके उस साहित्य को प्रकाशन करें, तो उससे भी एक व्यापक मानववाद को स्थापित करने में सहायता मिल सकती है।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि सुख शब्द योग जैसे साधन को सदगुरु की देखरख में अपनाने से सभी प्रकार की सिद्धि शक्तियों के आधार परम पुरुष से सम्पर्क करके जीवन मुक्ति की अवस्था में रहते हुए आध्यात्मिक मानववाद को जीवन में उतार कर न ही केवल ऋषियो द्वारा अनुभूत वैदिक सत्य को जीवन में उतारा जा सकता है बल्कि उसे मानवमात्र के लिये उपयोगी बनाया जा सकता है। प्राचीन काल के ऋषियों ने जिन वैदिक तत्वों को अपनी योग साधना से प्राप्त करके, मन्त्रों, ब्राह्मणों और उपनिषदों में लिख दिया है। और जिसे उन्होंने श्रुति कहा है वह उसी शब्द का अनुभव है जिसे वेदों में उद्गीन अथवा उधर का गीत कहा है।

कलियुग में शब्द योग को सहज रीति से अपनाकर परम-तत्व के अवतार कबीर, राधास्वामी, दयाल, सालिगराम जी महाराज, दातादयाल और परम दयाय जी जैसे परम सन्तों ने चेतन अवस्था में पूर्णतया प्राप्त करके प्राचीन काल के रिषियों के अनुभवों की पुष्टि ही नहीं की बल्कि उस अनुभव को हरएक मानव के लिये उपलब्ध कराया है। जिस परम अवस्था को प्राप्त करने के लिये रिषियों को हजारों वर्ष तक खोज करनी पड़ती थी वह अवस्था सहज में ही सुरत शब्द योग के अपनाने से हरएक सामान्य व्यक्ति प्राप्त कर सकता है।

सुरत शब्द योग या राधास्वामी योग नया नहीं है प्राचीन ऋषियों ने इसका अनुभव करके तेजोबिन्दु उपनिषद और नाद बिन्दु उपनिषद में इसका उल्लेख किया है। किन्तु प्राचीनकाल में शब्द योग की रीति हरेक व्यक्ति के पास उपलब्ध नहीं थी। सतयुग, त्रेता और द्वापर युग में क्रमशः ध्यान यज्ञ और पूजा को विधियाँ आम लोगों के लिये और साधकों के लिये प्रतिपादित की गई इन विधियों को प्रतिपादित करने वाले भी परम-तत्व के अवतार थे। उन युगों में ऐसी विधियाँ ही अपनायी जानी जरूरी थी क्योंकि इन युगों में व्यक्तियों की आयु लम्बी होती थी। किन्तु उसी परम तत्व ने कलियुग में सहज शब्द योग की विधि द्वारा अनन्त जीवों के उद्धार के लिये सन्तों के रूप में शब्द योग को अपनी दया के कारण प्रगट किया। इसी सच्चाई को बताते हुए राधास्वामी जी महाराज ने कहा है: –

सतयुग, त्रेता, द्वापर बीता।
काहू न जानी शब्द की रीता।।
कलयुग में स्वामी दया विचारी।
परगट करके शब्द पुकारी।।

इस शब्द में यह बात स्पष्ट है कि सतयुग, त्रेता, द्वापर युगों में शब्द का ज्ञान तो था, किन्तु शब्द योग के जानने वाले और उसका अभ्यास करने वाले नहीं के बराबर थे। मैं तो यह कहूँगा कि शब्द योग स्पष्ट रूप से सम्भवतया एक विधि के मुताबिक नहीं अपनाया जाता था। किन्तु हर एक योग में शब्द का भेद छिपा हुआ था। उदाहरण के तौर पर राजयोग सबसे पुराना है। इस योग में भी हरएक चक्र पर ध्यानलगाने का अलग-अलग बीज मन्त्र व बोज शब्द है जिसके मानसिक

सुमिरन से प्रत्येक चक्र में छिपी हुई शक्ति को प्रकट किया जाता था। उदाहरण के तौर पर मूलाधार चक्र पर सिद्धि पाने के लिए 'लंग' शब्द का बीज मन्त्र है। स्वाधिष्टान चक्र के लिये मंत्र शब्द बीज मन्त्र है इत्यादि। वेदों के सभी मन्त्र शब्द ब्रह्म हैं। हालाँकि ऋषियों ने शब्द योग से ही वेद, उपनिषद और दर्शनों की रचना की किन्तु शब्द योग की सहज रीति को बहुत कम प्रकट किया गया। देवर्षि नारद ने भगवान बाल्मीकि को शब्द योग ही बताया था।

कलियुग में परम तत्व अवतार ने शब्द योग की सहज विधि इसलिये पनपाई, क्योंकि आवागमन के चक्र में फंसे हुए दु:खी जीवों की संख्या बहुत अधिक हो गई है। राज योग इत्यादि अधिक होने के कारण सर्वप्रिय नहीं बन सके। इस लिये कलियुग से दयाल ने स्वयं अवतार लेकर शब्दयोग का भेद बताया और उसे सरल भाषा में हर एक व्यक्ति के लिये सत्संगों में पेश किया। केवल कलियुग के जीवों के लिये नहीं बल्कि उन ऋषि मुनियों के भी शब्द योग ही मोक्ष पाने का एकमात्र साधन है।

मुझे लगता है कि ब्रह्मचारी कृष्णदत्त का उद्धार भी सुरत शब्द योग के द्वारा ही होगा।

१५ मार्च को जब मुझे बरनावा में सत्संग के लिये बुलाया गया तो मेरे द्वारा सत्संग में वैदिक धर्म तथा आध्यात्मिकता के बारे में जो विचार व्यक्त किये गये श्री कृष्णदत्त ब्रह्मचारी ने उसी दिन मध्यान्ह की अचेतन समाधि में हजारों श्रावकों की उपस्थित में उन्हीं विचारों की पुष्टि की। चेतन अवस्था में श्री कृष्ण दत्त ब्रह्मचारी का व्यवहार एक साधारण तटस्थ व्यक्ति जैसा होता है। किन्तु १९७० से लेकर आज तक जब कभी उनका मेरा सम्पर्क होता है तो उनमें विशेष प्रेम

उमड़ता है और उनका चेहरा खिल जाता है। मैं समझता हूं कि यह सब उनके पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण है। और जब वह संस्कार परिपक्व हो जायेंगे तो सुरत शब्द योग की दीक्षा के बाद ही श्रृंगी ऋषि का यह जन्मस फल हो सकता है और उन्हें मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

हम १५ मार्च को बनवारीपुर से रवाना होकर खतौली में श्री नरेन्द्र त्यागी के घर कुछ समय के लिये ठहर कर करीबन ८ बजे सायंकाल मुजफ्फरनगर पहुंच गए। यहाँ पर श्री रूपेन्द्र बत्रा तथा उनके परिवार ने सत्संग का और बाहर से आये हुए पचासों सत्संगियों का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया। बत्रा परिवार विशेषकर रूपेन्द्र तथा उसकी सुयोग्य पत्नी सुषमा प्रेम और भक्ति से ओत-प्रोत हैं। जब भी हम उनके घर से सत्संगों के पश्चात विदा होते हैं तो यह दम्पत्ति प्रेम-वश होकर अश्रुपात की झड़ी लगा लेते हैं। रूपेन्द्र बत्रा की पत्नी के भाई श्री हरवंश मदान, कैथल हरियाणा से परिवार सहित आये हुए थे। उनकी श्रद्धा भी सराहनीय है। इनके अलावा श्री राजेश गुप्ता, देहरादून से और श्री गोयल तथा उनका परिवार भी केदारनाथ और बद्रीनाथ के इलाके से मुजफ्फरनगर आये हुए थे। श्री नरेन्द्र त्यागी और उनका परिवार भी मुजफ्फरनगर सत्संगों में सम्मिलित हुआ। ये तीन तथा रवि मलिक और श्री जयगोपाल सेठी के सहित स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के ब्राँच मैनेजर अर्थात पाँच पाण्डव मेरे से गुथे हुए हैं। वे जहां भी हों, मेरा आशीर्वाद उनके साथ रहता है। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि इन पाँचों परिवारों की भक्ति सफल हो।

मुजफ्फरनगर के दौरे में इस बार विशेषता यह रही कि

इस नगर से करीब २५ कि०मी० दूर मुन्डभर गांव में एक विशाल सत्संग आयोजित किया गया । इसका श्रेय मेरे प्यारे बेटे मुंडभर के मास्टर श्री ऋषिपाल को है । इस सत्संग में करीब ५०० सत्संगियों ने भाग लिया । यह सभी राधास्वामी मत के अनुयाई हैं । श्री ऋषिपाल ने श्रद्धा और प्रेम से सत्संग तथा भण्डारे का प्रबन्ध किया । इस प्रकार उन्होंने मुण्डभर गाँव में मानवता का केन्द्र बना लिया है ।

जहां तक सत्संग दौरे का सम्बन्ध है इस मासिक सन्देश में यहाँ तक की सूचना पर्याप्त है ।

सन्त मत की दृष्टि से 'कर्म तत्व' की चर्चा चल रही थी सभी मत-मतान्तरों में कर्म सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है । वास्तव में मानव अपने आप में पूर्ण है , क्योंकि उसका आधार परम पुरुष भी पूर्ण है । त्रिगुणात्मक जगत में आकर कर्मों के संचित होने से वह माया जाल में फंस गया है और अज्ञानवश सुख, दुःख का अनुभव कर रहा है । वेद मार्ग में कर्म काण्ड और यज्ञ आदि के द्वारा कर्मो से मुक्ति प्राप्त करने का विधान है । षट दर्शनों में कर्मों से मुक्ति प्राप्त करने की विधियाँ हैं । जैन दर्शन भी तपस्या और पाँच महाव्रतों के द्वारा जीव के कर्मों से मुक्त करके उसकी निज अवस्था व एवं केवल अवस्था की प्राप्ति का प्रयास करता है ।

इन सभी मत-मतान्तरों का यही दृष्टिकोण है कि इन कर्मों से तभी छुटकारा मिल सकता है जब हम कर्म करते समय निष्काम भाव रखें । इसी शैली को या रहनी को भगवद् गीता में निष्काम कर्म योग कहा गया है । जैन धर्म तपस्या को निष्काम कर्म समझता है, अद्वैत वेदान्त माया को

मिथ्या मानकर अपने आपको ब्रह्म मानते हुए केवल विचार की दृष्टि से माया और कर्म से अलग हो जाने को निष्काम कर्म मानता है आदि आदि। वास्तव में न तो तपस्या द्वारा शरीर को कष्ट देने से और न ही केवल विचार से अहं ब्रह्म अस्मि।' मैं ब्रह्म हूँ कह देने से कोई भी जीव कर्मयोगी नहीं वन सकता है। यदि कोई ऐसा समझता है कि तपस्या करने से वह अपने निजस्वरूप को पा सकता है तो वह भूल करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि तपस्या से या हठ योग से सिद्धि प्राप्त हो सकती है, लेकिन ऐसी सिद्धि शक्ति अहंकार का कारण बनती है और कर्मों से उठने के रास्ते में रुकावट डालती है। यहीं कारण है कि राधास्वामी योग व शब्द योग में गृहस्थ में रहते हुए और कर्मों से अलग न होते हुये अपने जीवन के चरम लक्ष्य और परमधाम को पा लेने का विधान है। कर्म के त्यागने से नहीं बल्कि कर्म में इस तरह महत्व हो जाने से जीवन मुक्त अवस्था मिल सकती है कि व्यक्ति तन-मन की ध खोसु बैठें।

एक हठ योगी साधु ने १२ वर्ष तक घोर तपस्या की। वह इस प्रकार हठ योग की समाधि की अवस्था में ऐक वृक्ष के नींचे बैठा हुआ था। वृक्ष पर बैठी हुई एक चिड़िया ने बीट की और वह बीट साधु के नंगे शरीर पर पड़ी। वह एकदम चौंक उठा। उसे बहुत क्रोध आया उसने आंखें लाल करते हुये ऊपर की तरफ देखा। ज्यों ही उसकी दृष्टि चिड़िया पर पड़ी वह जलकर राख हो गई और भूमि पर गिर पड़ी। योगी महोदय के मन में यह अहंकार हो गया कि उसे शक्ति मिल गई है वह समाधि से उठा और शहर की तरफ रवाना हुआ।

शहर के शुरू में ही वह एक मकान के दरवाजे पर रुक गया

उसके हाथ में कमण्डल था। उसने उस दरवाजे पर खड़े होकर दस्तक दी और उस घर में अपने काम में लगी पतिव्रता स्त्री को सम्बोधित करते हुये अलख निरंजन शब्द का उच्चारण किया। उसका मतलब ये था कि वह गृहणी उसके कमण्डल में आटे की भिक्षा डाले। वह पतिव्रता उस समय पानी का भरा हुआ गिलास लेकर अपने पति के सिरहाने खड़ी थी और उस के जागने की प्रतीक्षा कर रही थी। उसके पति ने कुछ समय पहले प्यास बुझाने के लिये पानी मांगा था। जब वह पानी लेकर आई, तो उसके पति की आँख लग गई। इसलिये उस पतिव्रता ने साधू की तरफ ध्यान नहीं दिया। उसका १ वर्ष का बच्चा जलती हुई आग के निकट खेल रहा था। पतिव्रता ने उस बच्चे की ओर भी ध्यान नहीं दिया। उसकी आँखें पति के चेहरे पर जमी हुई थी और मन में यह भाव था कि कब पतिदेव की आँखें खुले और उसकी सेवा सफल हो। यह सब कुछ सिद्ध योगी दरवाजे पर खड़ा हुआ देख रहा था। इतने में छोटा बच्चा खेलते-खेलते जलती हुई आग में गिर गया। योगी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आग ठन्डी हो गई और उस बच्चे को कोई हानि न पहुंची।

इसके बावजूद भी उस योगी के अहंकार में कमी नहीं आई. उसके मन में यह क्षोभ (क्रोध) था कि उस पतिव्रता ने उसकी आवाज को अनसुनी क्यों कर दिया। जब उसके मन में यह उथल-पुथल हो रही थी, ठीक उसी समय पतिव्रता के पति की आँख खुली और उस गृहणी ने उसे जल पिलाया। तब वह तुरन्त रसोई में गई और आटा लेकर योगीमहाराज को भिक्षा देने के लिये दरवाजे की ओर बढ़ी। सिद्ध योगी की आँखें लाल हो गई उसने क्रोध भरी आँखों से पतिव्रता को देखा।

पतिव्रता ने तुरन्त मुस्करा कर कहा—"योगी जी महाराज मैं कोई चिड़िया नहीं हूं कि आपकी सिद्धि शक्ति से जलकर राख हो जाऊं।" योगी नत मस्तक हो गया। उसका अहंकार जाता रहा। उसने बड़े अदब से उस पतिव्रता से कहा—"हे देवी! मुझे यह बता कि तुम्हारे में उस चिड़िया के भस्म होने की घटना के जानने की सिद्धि शक्ति कहाँ से आई?"

उस स्त्री ने योगी को सम्बोधित करतें हुये कहा—"योगिराज! यहाँ से करीब २० मील दूर एक गाँव है जिसमें धर्म-व्याध नाम का एक कसाई रहता है। आप उसके पास जाइये, तो आपको इस भेद का पता चल जायेगा।"

वह योगी तुरन्त उस गाँव की ओर चल पड़ा और सारा दिन चलते-चलते थका मांदा, रात तक धर्म व्याध के गांव जा पहुचा। रात को विश्राम करने के बाद प्रातः भिक्षा माँगकर और कुछ खा-पीकर पूछते-पूछते धर्म व्याध की दुकान पर जा पहुचा। धर्म व्याध मांस-काट-काट कर अपने ग्राहकों को बेच रहा था। ग्राहकों की लम्बी पंक्ति लगी हुई थी। सिद्ध योगी १ बजे दोपहर तक प्रतीक्षा करता रहा। जब धर्म व्याध अपने व्यापार से फारिग हुआ और दुकान बन्द करने लगा तो योगी उसके निकट पहुंचा। धर्म व्याध ने तुरन्त योगी को सम्बोधित करते हुए कहा—"क्या आपको शहर में रहने वाली पतिव्रता ने मेरे पास भेजा है?" योगी ने आश्चर्यचकित होकर धर्म व्याध से पूछा "महोदय, तुम कसाई का काम करते हो, और बकरे काटते हो। इस प्रकार हिंसक होते हुए भी तुम्हें दूर की घटना जानने की सिद्धि कैसे मिली?"

धर्म व्याध ने उत्तर दिया—"आप मेरे घर पर चलें और

दिन भर मेरे साथ रहें। मेरी दिनचर्या को देखकर आपको स्वयं ज्ञान हो जाएगा कि मेरे मन की एकाग्रता किस प्रकार होती है।"

योगी धर्म व्याध के घर पर गया धर्म व्याध ने शाकाहारी भोजन बनाया और सबसे पहले अपने वृद्ध माता-पिता को खिलाया। रात्रि को भी उसने माता-पिता की सेवा की, योगी उसकी दिनचर्या को देखता रहा। प्रातःकाल उठते ही धर्म-व्याध माता-पिता की सेवा में लग गया। उसने योगी को सम्बोधित करते हुये कहा "योगी महाराज ! मैं अपने माता-पिता की सेवा में लगा रहता हूँ। इसी कारण मुझे सर्वज्ञता की सिद्धि मिल गई।" यह सब अनुभव करने के बाद योगी का अहंकार जाता रहा।

इस दृष्टान्त का मतलब ये है कि योग साधना निष्काम कर्म तपस्या अथवा भक्ति का लक्ष्य स्वार्थ सिद्धि नहीं होना चाहिये। दूसरे शब्दों में कर्म में महव हो जाना मन का एकाग्रता है और योग साधना है है इसी दृष्टि से भगवान श्रीकृष्ण ने पहले अर्जुन को सन्यास योग व ज्ञान द्वारा कर्मों से ऊपर उठने की शिक्षा दी। राजयोग की ये शिक्षा साधक को मन की सभी वृत्तियों से अलग होने और उनका दमन करने का आदेश देता है। इस त्याग के मार्ग को अपनाना सन्यास अथवा साँख्य योग है। राजयोग के सबसे ऊंचे अनुभवी ऋषि पतान्जलो ने कहा है : "योगः चित्त वृत्तिः निरोधः।" अर्थात योग चित्त वृत्तियों को शान्त कर देना है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को अहा : कि गृहस्थी के लिये कर्म में लग जाना अर्थात उसे प्रवीर्णता और कुशलता से सम्पन्न करना योग। सत्पुरुष

गतांक का शेष

भगवान कृष्ण के शब्दों में :—

"योग: कर्म सू कौशलम् ।"

"अर्थात कर्म में प्रवीणता से लग जाना ही योग है ।" यही सहज योग हैं । इस सहज योग की सरल से सरल रीति शब्द योग कहलाती है । इसी सच्चाई की चर्चा अगले मासिक सन्देश में की जायेगी ।

हमारे मानवता मन्दिर में ऐसे-ऐसे निष्काम कर्म योगी भी हैं जो बिना किसी स्वार्थ से और केवल सेवा भाव से कर्म करते हैं । इन कर्म योगियों में से एक वृद्ध रिटायर्ड सत्संगी श्री जे० आर० बाली का नाम उल्लेखनीय है । श्री बाली होशियारपुर की म्यूनिसपल कमैटी में उच्च अधिकारी रहे हैं और इनका जीवन पवित्र रहा है । करीबन ६ वर्षों से श्री बाली हमारे मानवता मन्दिर के हिसाव-किताब की जांच-पड़ताल करते हैं और किसी प्रकार का वेतन और भत्ता नहीं लेते हैं । वैसे तो बहुत से कर्मचारी मन्दिर की सेवा दत्तचित्त होकर करते हैं । कुछ ट्रस्टी भी मन्दिर की निष्काम सेवा करने में लगे हुये हैं । उनमें से श्री एस० एन० भारद्वाज, श्री एस० एल० सेठी और आचार्य श्री शब्दानन्द उल्लेखनीय है । इस सम्बन्ध में भी मासिक सन्देशों में आपको सूचना मिलती रहेगी ।

मेरे प्यारो ! इन शब्दों के साथ मैं आपको फिर इस महीने की सद्भावना देता हूं और सच्चे दिल से चाहता हूं कि आप निष्काम योग और निष्काम भक्ति के भेद को समझें और मानवता के उसूलों पर चलते हुये इस लोक और परलोक की शान्ति प्राप्त करें ।

सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय
मानव

की अपेक्षा केवल साधन के महत्व को समझाता रहता है। स्वामी जी महाराज की वाणी है :—

यह करनी का भेद है, नाहीं बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करो, तब पाओ कुछ सार॥

जिस प्रकार सितार बजा कर सीखने से स्वयं उसका ज्ञान होता जाता है उसी प्रकार साधन करते रहने से साधन का ज्ञान स्वयं हो जाता है। सितार बजाने वाले को आवश्यक नहीं है कि वह किसी पुस्तक से सहायता ले वह सितार को हाथ में ले। शिक्षक से पूछे। जैसा वे बतावे उस पर अभ्यास करे और अभ्यास स्वयं उसे समय पर सितार बजाने वाला बना देगा। वह स्वयं शिक्षक बन जायेगा। बिल्कुल इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति धार्मिक पुस्तकों को हाथ भी न लगावे केवल साधना करता रहे और कभी-कभी सत्संग करता रहे तो वह साधन सम्पन्न बन कर आप ही ज्ञानी बन जायेगा।

:o:—

बचन सार राधास्वामी पद्य में इस साधन के सम्बन्ध में वर्णन है।

"राधास्वामी मत को सन्त मत भी कहते हैं। पिछले वक्तों में यह मत निहायत गुप्त रहा। और चूंकि इसका अभ्यास शुरू में प्राणायाम के साथ किया जाता था इस सबब से बहुत कम लोग वाकिफ थे और न किसी से इसका अभ्यास बन सकता था क्योंकि प्राणायाम करने में समय और परहेज सख्त दरकरार है, और खतरे भी बहुत हैं इस सबब से थे काम इस कदर मुश्किल था कि कोई इसमें कदम नहीं रख सकता था। अब हुजूर राधास्वामी ने ऐसी सहज युक्ति और आसानतरीका सुरत शब्द योग का अपनी दया से प्रगट किया है कि जो कोई सच्चा शौक रखता हो तो वह आसानी से इसका अभ्यास

कर सकता है। ख्वाह वह मर्द हो अथवा और ख्वाह जवान हो या बूढ़ा।"

—:०:—

१—इस कथन से साबित है कि राधास्वामी मत की शिक्षा क्या है ? योग नहीं है बल्कि बहुत प्राचीन है। पहले भी लोग इसे मानते थे पर जानने वालों और करने वालों की संख्या अधिक नहीं थी और प्राणायाम के सिलसिले में साधन कराने के कारण बहुत कम अधिकारी इसकी ओर ध्यान देते थे। शब्द योग अथवा सुरत शब्द योग का पता पातंजली भगवान्न के योग सूत्र. गुरू गोरखनाथ जी की वाणी, बौद्धों के योगाचार्य मत के ग्रन्थ, उपनिषदों के देवयान पन्थ और अनेक लेखों और ग्रन्थों से मिलता है। उपनिषदों के सिलेसिले में एक मुख्य पुस्तक का इससे सम्बन्ध है जो नाद बिन्दु उपनिषद कहलाती है। यजुर्वेद के मन्त्रों में भी इसका संकेत आया है मगर वह किसी अनुभवी पुरुष की व्याख्या के आधीन है। हिन्दुओं और बोद्धों को जाने दीजिये। यूनानी फिलोसफरों की वाणी में भी इसके संकेत पाये जाते हैं स्कन्दरिया के 'न्यूप्लेटो निज्म' के अनुयाई इससे किसी हद तक जानकार थे। पारसियों के सफरनक दसातीर (एक पुस्तक का नाम) और जरतश्नबी (पैगम्बर का नाम) के जिन्द (पुस्तक) में इसके सकेत आये हैं मुसलमान सूफियों में इस साधन को सूते सरमदी शगल नसीरा और सुल्तानुलजकार कहते है। चुशितया कलन्द्रिया और नक्श बन्द्रिया आदि इसके महत्व दो मानते हैं। हमारे यहाँ कबीर पन्थ, नानक पन्थ, आदि की वाणियों में बहुत वचन आते हैं। ईसाइयों की 'युहन्ना' की इन्दजील के आदि की आयतों में भी इसका संकेत मिलता है। हां चूंकि यह घट का भेद 'इल्मसीना

है सिवाय राधास्वामी पन्थ के अब किसी जगह इसके स्पष्टी-अथवा व्याख्या का सामान दृष्टिगोचर नहीं होता और न कोई व्यक्ति चाहे वह किसी सम्प्रदाय का क्यों न हो इसकी व्याख्या को मानने वाला है। प्रारम्भ में इसके अभ्यास में बड़ी कठिनाइयां थीं। शनै-शनै ये सब घट भेद के रहस्य को भूलते चले गये और अब इसकी ओर से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं। सत-पुरुष राधास्वामी दयाल ने अब नये सिरे से इसको जारी किया और संशोधन करके इतना सरल और सुगम बना दिया कि पाँच-सात वर्ष के बालक तक भी इसे कर सकते हैं।

—:०:—०

साधन प्राचीन है वह एक तरह का स्वाभाविक और प्राकृतिक साधन है जो मनुष्य की शक्ति को संयम में रखने और चित्त के एकाग्र करने में सहायक होता है। इससे किसी को इन्कार न होना चाहिये। लेकिन राधास्वामी मत की यह विशेषता है कि उसने उसे सहज बना दिया। ये कोई छोटी बात नहीं है। सार बचन की भूमिका में यह वर्णन आता है!—

'यह (जुगत) युक्ति-जो हुजूर साहब ने अब जारी फरमाई है किसी ने पिछले वक्तों में इस आसानी के साथ नहीं जारी की और यह ही सबब है कि अन्तर मुख अभ्यास सब मतों में जो आजकल दुनियाँ में जारी है गुप्त और पेशीदा हो गया। और सब मतों के लोग बाहरमुखी पूजा और धर्म कर्म में लग गये। और सच्चे मालिक की पहचान और उससे मिलने की जुगत और उसके रास्ते और मंजिलों के भेद से नावाकिफ रह गये।

इन पंक्तियों में कई बातें विचार करने के लिये मौजूद

है प्रथम सुभीता, दूसरे अन्तरीय अभ्यास की आवश्यकता, तीसरे बाह्य साधन की अनावश्यक प्रथा, चौथे सच्चे मालिक की पहचान, पाँचवे इसके मिलने की युक्ति, छटे घट के मार्ग और स्थान।

१: – प्रत्येक कार्य के करने के उचित ढंग होते है और उनका पालन उस काम को सरल बना देता है। लेकिन यदि गलत समझाकर कोई व्यक्ति उसे कठिन कर दे तो फिर उसकी ओर से चित्त उकता जाता है, और वह उसे छोड़ बैठता है। इस प्रकार सरल से सरल काम को केवल ख्याल दिला कर पेचीदा और कठिन बना दिया जाता है। इसके प्रतिकूल यदि साहस और उत्साहंबर्धक ख्याल दिलाये जायें और साथ ही साथ मानवीय सानुभूति का व्यवहार किया जाए तो कठिन से कठिन काम को चुटकी बजाते हुए सरल कर दिया जाता है। योग के सम्बन्ध में प्रारम्भ से ही ऐसी गल्ती होती चली आ रही है, यद्यपि योग प्रत्येक वाणी का प्राकृतिक कर्म है और प्रत्येक व्यक्ति अनजाने उसे करता रहता है। स्वास जाती है, स्वाँस आती है, स्वाँस ठहरती है। इन तीनों ही प्रकार के कर्मों के अन्दर योग के रेचक, पूरक, कुम्भक घड़े की तरह भरकर स्थिर होना है। कौन समझदार मनुष्य इन्कार करेगा कि क्षण प्रतिक्षण प्रत्येक प्राणी यह कार्य नहीं करता। यही तो योग की श्रेणियाँ हैं योग वास्तव में चित्त की वृत्ति का निरोध है। ये स्वयं हुआ करता है। चित्त की वृत्ति के निरोध में सुख चैन मिलता हैं।

२:—सुख हमको कहाँ मिलता है ? इस पर थोड़े से लोग ही बिचार करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को सुख चैन उसके अन्तर ही में मिलता है और वह केवल चित्त की वृत्ति का निरोध

और मन की एकाग्रता का परिणाम है। जब आदमी दिन के काम-धन्धों से निवृत्त होकर रात के वक्त सो जाता है और चित्त में शान्ति आ जाती है तो उसे सोने का आनन्द प्राप्त होता है। ये मन के सुखी होने का एक नमूना है। अभी इस स्वप्न की दशा में वास्तविक आनन्द नहीं आया, क्योंकि मन अब तक शरीर के मण्डल को छोड़कर अपने अन्दर विशेष प्रकार के रेचक पूरक के ताने-बाने बुन रहा है।

अब यदि वह थोड़ा सा आगे बढ़े और अच्छी तरह उसकी वृत्तियो का निरोध हो जाये तो उसे गहरा आनन्द आयेगा। इसका नाम सुषुप्ति है। सुषुप्ति को गहरी नींद कहते हैं गहरी नींद की दशा के सुख से एक मनुष्य भी अनभिज्ञ नहीं है मगर वह सिद्धान्त को अथवा नियम को नहीं जानता। शारीरिक मण्डलों में बैठा हुआ हमारा मन जब-जब साँस लेने का कार्य करता है तो उसके रेचक, पूरक और कुम्भक के कार्य नाक की जगह हुआ करते हैं। वह यहाँ जितना प्राकृतिकढंग पर कुम्भक अर्थात खुद जब्ती (आत्म संयम का अमल अथवा साधन करेगा उतना ही अधिक सुखी रहेगा। कुम्भक ही के कारण मनुष्य के जीवन में भिन्नता की सूरतें रहती हैं जिसमें जितनी खुद जब्ती (आत्म संयम) की शक्ति होती है उतना ही वह साँसारिक व्यवहार में सफल होता है। इच्छा शक्ति की दृढ़ता का रहस्य इसी प्राकृतिक कुम्भक के पर्दे में छिपा हुआ है यहाँ तक शारीरिक मण्डल के विषय में समझ लो। इसे हम जाग्रत कहते हैं।

जब यही मन शारीरिक स्थूल मण्डल को छोड़कर अपने सूक्ष्म मानसिक मण्डल में आता है तो यहाँ भी उसकी वही क्रिया रहती है। साँस आती है, साँस जाती है, साँस रुकती है मानसिक मण्डल का नाम स्वप्नावस्था है लेकिन प्रत्येक व्यक्ति

का मानसिक सुख एक समान नहीं होता और सबको एक जैसा सोने का आनन्द नहीं आता। प्रत्येक आदमी का अपना निज अनुभव साक्षी है दूसरे साक्षी के प्रमाण की यहाँ आवश्यकता नहीं है कोई अच्छे स्वप्न देखता है कोई बुरे और कोई सामान्य कोई स्वप्न देखता हुआ अन्तर ही अन्तर में प्रसन्न होता है, कोई बुरे स्वप्न देखकर शोक सन्ताप का लक्ष्य बनता है बहुधा लोग स्वप्न में बड़बड़ाते हैं, रोते चिल्लाते हैं। इसका कारण भी वही है। वहाँ इनको चित्त की वृत्ति के निरोध में पूर्ण रूप से सफलता नहीं होती और वास्तविक आनन्द नहीं आता। जो यहाँ है वही वहाँ है। जो शरीर में है वही मन में है। केवल स्थान का भेद है और स्थूल व सूक्ष्म अवस्था का अन्तर है, जब मन शरीर और और मन के मण्डलो को छोड़ जाता है व आत्मिक मण्डल पर सैर करने पर आता है तो वहाँ प्रत्येक व्यक्ति के चित्त की वृत्ति का पूरा-पूरा निरोध हो जाता है। आत्मा में भिन्नता नहीं है और सबको सुषुप्ति का एक सा आनन्द आता है। ये कुल बातें जो हमने कही हैं अक्षरशः प्राकृतिक है। जिसको थोड़ी सी भी बुद्धि वह इनकी सत्यता पर विरोध न करेगा।

चित्त की वृत्ति का पूर्ण निरोध अन्तर में होता है। योग का ध्येय लोगों को अन्तरमुखी वृत्ति वाला बनाने का है। जो व्यक्ति जितना अन्तरमुखी होगा, वह उतना ही शान्ति, सुख, चैन ओर आनन्द का उत्तराधिकारी होगा। यहाँ तक कि यदि किसी ने अन्तरमुखी वृत्ति की भली प्रकार कमाई कर ली है तो वह सुषुप्ति के प्रभाव को जाग्रत और स्वप्न में भी पैदा कर सकता है और दुनियाँ के कारवार में लगे रहने पर भी

उसे बेचैनी, घबराहट और अशान्ति का भय नहीं रहता। हम किसी को खोल-खोल कर क्या कहें। कुछ पशुओं तक में भी वह शक्ति है कि ये चलते हुए गहरी नींद का स्वाद लिया करते हैं। यदि मनुष्य कमाई करके उसे अपने अन्तर में पैदा कर ले तो फिर आश्चर्य की कौन सी बात है, मगर उनके लिये क्या कहा जाए जो कठिनाई को ही पसन्द करते हैं वे तो हर सुगम अभ्यास को कठिन बनाकर आराम से वंचित रह जाते हैं। औरों को पथ भ्रष्ट करके सत् मार्ग पर नहीं आने देते।

३:—बाह्य अभ्यास बाह्य दुनियाँ में रुचि पैदा करता है। बाहरमुखी कर्म बाहरमुखी कर देता है। अन्तर की अपेक्षा बाहरी जगत् में अधिक परिवर्तन होता रहता है और परिवर्तनों के प्रभाव सदा ग्रहण करते रहने से हृदय में शान्ति और चैन नहीं आने पाता और वह चंचल हो जाता है। चंचल को सुख नहीं मिलता। वह परेशान हो जाता है। दुनियावी मजहबों का बाहरी कर्मकाण्ड अशान्ति का कारण होता है तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज यह सब बाहरमुखी कर्म हैं। जो नमाज की उठक-बैठक करेगा, उसे मानसिक आनन्द का लाभ कठिनता से प्राप्त होगा। हाँ, कुछ व्यक्ति निःसन्देह ऐसे मिलेंगे जो बाह्य प्रभावों की चिन्ता न करके एकाग्रता का लाभ उठाते होंगे, मगर यह दशा सब की नहीं हो सकती। ऐसी विशेषता वाले बिरले होते हैं। उनका यहां वर्णन नहीं है। संसार में ऐसे लोग भी तो हैं जो जागते हुये सुषुप्ति का सुख भोगते रहते हैं मगर इनकी संख्या बहुत थोड़ी होती है। कहने का अभिप्राय ये है कि चित्त की वृत्ति की निरोध की सफलता के लिये बाह्य अभ्यास अथवा बाहरमुखीकर्म अनावश्यक नहीं है। प्रारम्भिक अवस्था में उनसे काम लिया जा सकता है, मगर वे इतने लाभ प्रद नहीं होते। अन्तरमुखी साधन अन्तरमुखी है और बाहर-

मुखी बाहरमुखी है । राधास्वामी मत केवल अन्तर्मुखी बनाने का प्रबन्ध करता है ।

४: चौथी बात मालिक की सच्ची पहचान की बाबत है उसके विषय में यदि अधिक तर्क वितर्क किया जाता है तो विषय बढ़ जाएगा । हम केवल इतना कहने का साहस करते हैं कि किसी ने मालिक को सगुण मान रखा है, किसी ने निर्गुण कोई उसे और कुछ कहता सुनता है । कोई सच्चे मालिक को ब्रह्म और कोई परब्रह्म मानता है । ब्रह्म के तीन शास्त्रों में वर्णन किये गये हैं विराट अव्याकृत, हिरण्य गर्भ । विराट जाग्रत का, अव्याकृत स्वप्न का और हिरण्यगर्भ सुषुप्ति का अभिमानी है । यदि कोई किसी से ये प्रश्न करे कि तुमने किस को अपना इष्ट माना है तो उत्तर देने में हिचकिचाहट होगी क्योंकि ब्रह्म के तीनों ही रूप विकारी हैं । जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति के विकार से रहित नहीं हैं । अत: जो जिस इष्ट का ध्यान करेगा, उसी के विकार उसमें आऐंगे । ये परिभाषा हिन्दुओं के दार्शनिक लोगों की है । छोटे लोगों का तो उल्लेख ही नहीं है । कोई शिव का उपासक है, कोई विष्णु का और कोई शक्ति का और इसी प्रकार । इनमें से किसी एक को भी समझ नहीं है कि असली इष्ट क्या है और किसे धारण करना चाहिए ।

इसी प्रकार मुसलमान सूफियों की भी दशा है । वह सिंहासन पर विराजमान खुदा की डींगें मारते हैं, मगर यह नहीं बता सकते कि वह नासूती हैं या जबरूती हैं, लाहूती हैं अथवा हूती, आदि आदि । जो त्रुटि हिंदुओं में हैं वे मुसलमान सूफियों में और भी अधिक है और ये त्रुटि टीका टिप्पणी तथा व्याख्या के बिल्कुल अयोग्य है । क्या हुआ यदि साधन और अभ्यास करने से किसी में गुप्त भेद जानने की करामत तथा चमत्कार

क गोष्ठीता उत्पन्न हो गई । वह इष्ट पद तो नहीं है । वह भी इष्ट की समझ से अनभिज्ञ हैं ।

तीसरा समुदाय कहता है मैं परम तत्व,सर्वव्यापक शक्ति को इष्ट बनाता हूँ ।' यह और भी गल्ती में पड़ा हुआ है जहाँ स्थिति (बका) है वहाँ प्रलय (फना) है । जहाँ व्यापकता है वहाँ ही अव्यापकता है । जहाँ अद्वैत है वहाँ ही द्वैत है । जहाँ पूर्ण है वहा ही अंश है । ये पक्ष भी द्वन्दावस्था से परे जाने का मार्ग नहीं जानता और एकत्ववादी होने पर भी अद्वैतपन से ऊंचे नहीं चढ़ता । संकेत रूप में हमने केवल इतना बता दिया । समझ वालों के लिये इतना ही काफी है । परिणाम इस का यह है कि इन लोगों में से वास्तव में सच्चे मालिक की पहचान किसी में भी नहीं है । बात बनाना और है और असलित तक पहुँचना और बात है । सच्चा मालिक कौन है ?इस का वर्णन इसी पुस्तक में आ जाएगा. इस कारण यहाँ उसका वर्णन नहीं करते ।

५: मालिक के मिलने की युक्ति क्या है ? यह प्रश्न मुख्य और आवश्यक है । समस्त उपदेश धार्मिक रीति-रिवाज की शिक्षा और समस्त धर्म नियम इसी मुख्य प्रश्न के उत्तर के विभिन्न रूप हैं । मगर जब मालिक ही का पता नहीं है तो फिर उसके मिलने का उपाय क्या बताया जाए । फिर भी हम गुरू नानक की वाणी सुनाकर उसका संक्षिप्त मगर पर्याप्त उत्तर देते हैं । वह यह है:—

जैसे जल में कंवल निरालंब, मुर्गाबी निशानिदे ।
सुरत शब्द भवसागर तरिये, नानक नाम बखानिये ॥

नानक साहब स्पष्ट शब्दों में सुरत शब्द योग, की कमाई को उससे मिलने का उपाय निश्चित करते हैं, जिसकी सुगम

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

समझने योग्य और प्रभावित करने वाली शिक्षा राधास्वामी मत देता है।

(६) उसके मार्ग और स्थान क्या हैं ?

मार्ग और स्थाव मनुष्य के अपने घट के अन्दर हैं बाहर नहीं है। उनके नाम प्रत्येक आध्यात्मिक पन्थ के यहां भिन्न-भिन्न हैं। सूफियों में नासूत, जबरूत, मलकूत,लाहूत, हूँत व हूंतुलहूंत शब्द हैं। हिन्दुओं में भू, भुवः स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् बताये गए हैं। सन्तमत में सहसदल, कंबल, त्रिकुटी, भंवरगुफा सत, अलख, अगम और राधास्वामी कहे गये हैं। सूफी या हिंदू शास्त्र,सत् या सत्यम तक वर्णन करते हैं। संतों ने इसको भी इष्ट नहीं माना उसका कारण है सबकी व्याख्या शनैः-शनै विवरण सहित जहां अवसर आयेगा,कर दी जायेगी निष्पक्ष पाठक स्वयँ ही अपने अन्तःकरण में इसका निर्णय कर सकेंगे कि राधास्वामी मत की शिक्षा किस सीमा तक सचाई पर आधारित है

—:०:—

राधास्वामी मत में ३ बातों को अत्यन्त आवश्यक माना जाता है उसके सम्बन्ध में सार वचन राधास्वामी की भूमिका में ऐसा लेख आया है :—

"राधास्वामी मत में तीन चीजें दरकार हैं। एक गुरू, दूसरा नाम और तीसरा सत्संग।"

और यही तीन चीजें वसीलिये[1] उद्धार यानी निजात[2] की हैं।

अव्वल गुरू पूरा और सच्चा होना चाहिए यानी सन्त सत्गुरु। वंशावली (खानदानी) गुरुओं से काम नहीं निकल सकता। दूसरे नाम भी सबसे ऊंचा और सच्चा और पूरा

---

(१) सहायक (२) मुक्ति।

और असली यानी जाती चाहिए मय भेदनामी यानी मुनस्समा[1] के। कृतिम यानी सिफाती नामों से काम नहीं बनेगा। तीसरे सत्संग भी सच्चा चाहिए और उसकी दो किस्में हैं। एक सत्संग अन्तरीय व दूसरा सत्संग बाहरी। अन्तरी सत्संग यह है कि जब अभ्यासी अपनी सुरत यानी जीवात्मा या रूह को अन्तर में चढ़ाकर सत्पुरुष राधास्वामी के चरणों में लगाये या उस तरफ को मुतवज्जह करे। और दूसरा यह कि जब उसको दर्शन और संग सत्पुरुष का जो कि सच्चे व पूरे सन्त व साधू हैं, नसीब होवे और यह उनके वचन सुने और दर्शन करे व जो सेवा बन सके करे। इन दोनों किस्म के सत्संग से कोई दिनों में हालत बदलती हुई साफ मालूम होगी।

—०० –

इन वाक्यों के अन्दर पाँच-सात बातें हैं जिन पर सोच-विचार करना आवश्यक है : (१) गुरु और गुरु भी सच्चा (२) नाम और नाम भी सच्चा (३) नाम व नामी का भेद (४) सत्संग और सच्चा सत्संग (५) अन्तरीय सत्संग (६) बाहरी सत्संग (७) सत्पुरुष राधास्वामी का आदर्श। जब तक यह सब बातें भली भांति समझ में न आ जाए, सन्त मत की असलियत का ज्ञान होना कठिन है।

गुरु नाम और सत्संग : - ये सन्तमत के तीन स्तंभ हैं। ये संत मत का त्रिपुटीवाद कहलाता है। जहाँ कहीं आध्यात्मिक शिक्षा के दिये जाने का सिलसिला चल रहा होगा वहाँ ये ३ बातें मौजूद होंगी इनके बिना काम नहीं चल सकता।

गुरु वह है जो अन्धकार में प्रकाश की सूरत पैदा कर दे। अन्धेरे में हाथ को हाथ नहीं सूझता और जब आँख पर पट्टी

---

(१) नाम वाला।

चढ़ी हो तो कोई क्या देखेगा और क्या समझेगा ।

यह जगत अन्धकार है । घटाटोप अंधेरा छाया हुआ है । जीवात्मा इसमें बेबश रहते हैं या टटोल-टटोल कर चलते हैं । दोनों दशाऐं दुःखदाई हैं । बेबशी पाप हैं । टटोल कर चलना कष्ट है । इसके अतिरिक्त यह भी तो नहीं मालूम होता कि हम किधर जा रहे हैं । सम्भव है मार्ग में कुँआ हो और उसके अन्दर मुंह के बल गिर पड़ें । यदि ऐसा न भी हो तो अज्ञान स्वयं ही महा दुःखदाई दशा है ।

इनमें से बहुत कम आदमी हैं जो प्रकृति और सृष्टि के भेद को जानते हैं । यह क्या है ? इसका कारण क्या है ? क्यों यह रचना रची गई ? आया इसके गोरख धन्धे में फंसे रहने में भलाई है या इससे छुटकारा पाने में अच्छाई है ? हम स्वयं क्या हैं ? हमारा इस रचना से क्या सम्बन्ध है ? इन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर सिवाय सच्चे गुरू के कोई नहीं दे सकता यदि अन्य प्रकार से उत्तर मिलता भी है तो वह सन्तोषजनक सिद्ध नहीं होता ।

यदि कोई व्यक्ति किसी धार्मिक ग्रन्थ को दिखलाते हुए उसको इन प्रश्नों का उत्तर का आधार बताता है तो ग्रंथ स्वयं जड़ और निर्जीव वस्तु हैं । ग्रंथों के साथ चाहे प्रेम हो मगर असली और सच्ची सहानुभूति उत्पन्न नहीं हो सकती । और वह जीवित पुरुष द्वारा व्याख्या चाहती है । इस कारण से जिस मनुष्य को थोड़ा भी आत्मिक पथ पर बढ़ने का दर्जा प्राप्त हो चुका है, इनकी ओर से संतुष्ट नहीं हो सकता सच्ची संतुष्टता तो वही दे सकता है जो हमारी तरह रंग रूप, भाव और विचारों वाला हो । यदि उनके साथ हमको प्रेम और सहानुभूति है तो उसकी एक-एक बात सरलता से हमारे हृदय में अंकित हो जाती है और हमारी अवस्था बदल जाती है ।

खानदानी (वंशावली) गुरुओं की दुनियां में कमी नहीं है। लेकिन उनका व्यवहार, अमली जीवन और लोक परलोक की पूजा के स्वार्थमय कार्य हमको पग-पग पर चौकन्ना और सावधान बनाते रहते हैं। हम हजार प्रयत्न करें मगर मन को क्या करें, यह तो अपनी जैसी करता ही रहेगा। हम हजार इस मन को शांत करें मगर यह मानने वाला कब है। आज सम्भव है यह किसी प्रकार दबा दिया जाय, मगर कल फिर उभर खड़ा होगा। सहस्रों ही प्रकार के विरोध और खण्डन के उदाहरण प्रस्तुत करने से मानेगा नहीं। इस कारण अति आवश्यक है कि कोई ऐसा पुरुष हमको मिल जाय जिसमें पूर्ण मनुष्यता के साथ-साथ आत्मिक तेज और प्रकाश हो वह निःस्वार्थ हो उसका अमली जीवन बिना कहे सुने मशाल (रोशनी) बन कर अन्धकार को दूर और प्रकाश को समीप करता चले। तब ही जाकर विश्वास की फुरना होगी। ऐसे पूर्ण पुरुष को गुरू कहते हैं, और उसके रूप का दर्शन पाना आवश्यक है।

२ – वह जब प्राप्त होगा, सच्चा नाम देगा। नाम स्वयमेव क्या है? यह अध्यात्म (रूहानियत) का तत्व है। पुस्तकों में हजारों ही नाम है। आदमी किस-किस को मन दे। यह नाम स्वयं भ्रम की दशायें पैदा करेंगे क्योंकि ये नाम अधिकतर कृतिम (सिफाती) हैं। निज नाम (जाती) नहीं है। कृत्रिम नाम गुणों के बंधाव में या घेरे में जकड़े रहते है। गुण में सीमितपना है। परिपूर्णता नहीं है। सीमितपना नुक्स (अपूर्णता) है। नुक्स कष्ट पैदा करने वाला होता है। यह कारण है कि कोई पुस्तकीय वर्णित नाम मुक्ति का सामान पैदा नहीं कर सकता, क्योंकि वह जब सुना जाएगा वह एक ही प्रकार के विचार और भाव को पैदा करेगा। गुरू जो नाम देंगे वह कृत्रिम नहीं होगा बल्कि जाती अर्थात निज नाम होगा

और कमाई किए जाने के कारणसे उसके अन्दर परिपूर्णता के सारे गुण मौजूद होंगे। बात सब ही कहते हैं मगर स्वयं आचरण करने वाले की बात दिल को लगती है। विद्वान की बात इस कान से सुनी उस कान से निकल गई और प्रभावहीन रही यह बात हर जगह देखने में आती है। बुद्धिमान और अज्ञानी एक ही प्रकार की बातें करते हैं। एक में असर रहता है दूसरे में असर नहीं होता। गुरू के नाम में उनकी कमाई शामिल रहती है इसलिये जो निज (जाती) नाम गुरू से मिलता है। उसमें विशेष प्रकार का रासायनिक प्रभाव होता है। इस कारण से उसकी बरकत और प्रभाव विशेष प्रकार के होते हैं बाह्य नाम और रूप का संक्षिप्त वर्णन कर दिया गया।

नाम और नामी के भेद का ज्ञान:—यह अत्यन्त आवश्यक बात है कि जब नाम मिल गया तो नामी की तलाश मुख्य है मगर यहाँ एक रहस्य है जिसका हृदयाँकित करा देना परमावश्यक है मान लो गणित विद्या है जो व्यक्ति गणित जानता है और गणित में निपुण है, तुम उसे गणितज्ञ कहोगे या नहीं गणित जानने वाला सदैव गणितज्ञ कहलायेगा। इसी प्रकार नाम का जानने वाला या नाम का रखने वाला ही नामी कहलायेगा। बात मोटी है और बारीक भी है। जो लोग समझ रखते हैं उनके लिये तो साधारण हैं और जो अंनसमझ है उनके लिये असाधारण हैं। नाम गुरू में है और नाम गुरू का है। इसलिये गुरू की जात व्यक्तित्व को नामी मानने में कोई हानि नहीं है। लेकिन खोज अभी तक समाप्त नहीं हो गई।

यदि नाम मिल गया और नामी का प्रत्यक्ष रूप दिखाई भी दे गया तो उसी पर ठहर जाना और सन्तोष करना अच्छा नहीं है। नामी के रूप की खोज अपने अन्दर करनी चाहिए। यह आध्यात्म (रूपानियत) के नाम की दूसरी सीढ़ी है पानी

में चन्द्रमा की सूरत दिखाकर किसी ने तुम्हें बता दिया कि ये चन्द्रमा है। वह वास्तव में चन्द्रमा है। उसके चन्द्रमा होने में कोई संशय नहीं है लेकिन वह अन्त में जल में और पृथ्वी पर दिखाई देने वाला चन्द्रमा है। इसको देखकर दृष्टि को ऊंची करके आकाश के चन्द्रमा को देखने की आवश्यकता है। जब तक वह न देख लिया जायेगा, असली सन्तुष्टि न होगी, क्यों कि पानी के अन्दर जो चन्द्रमा है वह प्रतिबिम्ब है और ऐसे चन्द्रमा अनेकानेक दृष्टिगोचर हो सकते हैं। उनका दृश्य फिर भी भ्रम उत्पन्न करने वाला हो सकता है। इस कारण से दृष्टि को आकाशी बनाकर ऊपर की तरफ भी देखने की आवश्यकता है। जिस समय वह दिखाई दे जायेगा अपने आप विश्वास हो जायेगा कि चन्द्रमा वास्तव मेंहै एक ही है अवसर की ऊंचनीच समीपता और दूरी के कारण पानी में बहुत से अक्सी चन्द्रमा वन जाते हैं। आकाश पर असली चन्द्रमा एक है और पृथ्वी पर नकली और असली अनेक चन्द्रमा हैं। इस प्रसंग का भी निर्णय करना मसलहत है।

बहुत अच्छा आकाश का चन्द्रमा दिखाई दे गया। उसका दृश्य भी देख लिया गया। नाम के प्रताप से नामी भी मिल गया। अब इसमें कोई संशय बाकी नहीं रही। लेकिन क्या रूहानियत (अध्यात्म) की यहीं तक समाप्ति है? नहीं, अभी आगे और चलना है। इस अंतरीय आसमानी चंद्रमा से (नूर) प्रकाश उत्पंन करो और स्वयं भी प्रकाश जैसे बन जाओ ताकि दुई का ज्ञान दूर हो जाय और तुममें और इनमें थोड़ा भी दुई का दोष न रहे।

तू-तू करता तू भया, मुझमें रही न हूं।
वारी तेरे नाम की, जित देखूं तित तूं ॥

यह नाम और नामी का भेद है जो यहाँ संक्षेप में समझाया गया है। यह एकत्व और एकत्ववाद का इत्र है। यहां आकर अद्वैत के रहस्यों की समाप्ति हो जाती है।

लेकिन यह अवस्था आये किस तरह से ? नाम भी सुन लिया और नामी का प्रत्यक्ष दर्शन भी हो गया। इसका उपाय सत्संग है। गुरू की संगत ग्रहण करो। उसकी सेवा में बैठो। उसके वचनों को सुनो ताकि भावनाओं में उभार पैदा हो वह ठीक इसी तरह है जैसे चंद्रमा का नाम सुनकर जल का चंद्रमा देख लिया। अब वही चंद्रमा अपने तत्व का दृश्य दिखा-दिखा कर ऊपर की ओर दृष्टि करने का आदेश कर रहा है। इसी आदेश को सत्संग के वचन कहते हैं सत्संग का अर्थ है सत का संग। सत्संग परस्पर मिल बैठने को नहीं कहते बल्कि सत स्वरूप की संगत सत्संग कहलाती है। सत्पुरुष ही का संग सत्संग है। दूसरा नहीं है। जब तक हृदय में ऐसा विश्वास न हो लेगा, असली संगत की बरकत व्यर्थ रहेगी और लाभदायक न होगी। यही सच्चा सत्संग है।

[५] **बाहरी सत्संग**:-गुरू की संगत को कहते हैं। इससे यह लाभ होता है कि जिस समय वह प्रवचन कहते हैं हृदय के समुद्र में आत्मिक भावों की लहरें उमड़ने लगती हैं। यह प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि प्रभावशाली उपदेशक का वचन दिल में उमंग उत्पंन करता है और श्रोता को उसका लोहा मानना पड़ता है। अतः जब बार-बार उच्च कोटि के प्रभावशाली गुरू के वचन सुने जायेंगे तो वह अपना प्रभाव क्यों न करेंगे। अग्नि के पास बैठने से गर्मी आती है। जल की समीपता तरावट देती है। जब इन तत्वों का प्रभाव है तो फिर गुरू में अध्यात्म (रूहानियत) का प्रभाव क्यों न होगा ! अध्यात्म

के धारण और प्राप्त करने के लिये यह बाहरी सत्संग अत्यन्त आवश्यक है।

जिन कीन्हा सत्गुरु का संग, सत्पुरुष का पाया रंग।
बंदगी भजन करे सौ बरसा, गुरु का संग दो घड़िया बढ़का ॥

[६] अन्तरीय सत्संग:- यह अभ्यासी को अपने अन्दर प्राप्त होता है। साधन और अभ्यास के सिलसिले में वह अपने अन्दर इसी दृश्य को देखता है जो उसने बाहर देखा है। नाम उसके अन्दर है नामी भी उसके अन्दर है। बाहर कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। वह जरा इसे करके देखे तो उसे आप पता लग जायेगा। इस प्रकार बाह्य साधन करके अभ्यासी अपने अन्दर की ओर रुजू होगा। उसे बूंद में समुद्र लसराता हुआ मिलेगा और अणु-२ में चमक-दमक के साथ प्रकाशवान सूर्य दृष्टिगोचर होगा। ध्यान के साधन से उसके भावों को इतनी गति और उभार मिलेगा कि वह मग्न, लीन, और बेसुध होता चलेगा। तंमयता की दशा आ जायेगी और चूं चरां की आवश्यकता न रहेगी।

[७] सत्पुरुष राधास्वामी दयाल का दर्शन:- जब तक आदर्श, आइडियल या इष्ट दृष्टि के सामने न हो तब तक अनाप-शनाप कार्यवाई करना व्यर्थ होता है। इष्ट को समझ लेना पहले ही मुख्य है। हुजूर मोअल्ला ने राधास्वामी का इष्ट बताया है और इसी को सबसे ऊंचा इष्ट ठहराया है। यह क्या है ? राधास्वामी योग का पठन-पाठन इसे अपने आप सुगमता से हृदयांकित कराया जाएगा। रूहानी (अध्यात्मिक) मरहलों के संक्षिप्त वर्णन में हमने इस को सूक्ष्म रूप से लिख दिया है। यह सूफियों के हूतुलहूत, वेदान्तियों के परब्रह्म और शुद्ध चेतन और योगियों के सत्यम् पद से ऊंचा है जहाँ वाणी

और मन का गम नहीं है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता हां, बाह्य सत्संग के वचन और अन्तरीय सत्संग के नियमपूर्वक अभ्यास से इसका आपही आप अनुभव हो जाता है। उस समय आप ही प्रतीत होने लगता है कि हुजूर महाराज की तालीम कितनी ऊंची और श्रेष्ठ है।

सार वचन राधास्वामी नज्म में लिखा है:-और जो और काम परमार्थी किस्म के हैं मसलन तीर्थ व्रत और मन्दिर और मूरत व पोथियों का पाठ और जप और सुमिरन सिफाती नाम का,इन कामों की करनी से जरा भी हालत नहीं बदलती क्यों कि इन कामों में निज मन व जीवात्मा यानी रूह जिसको संत सुरत कहते है शामिल नहीं होते। औरइसी सबब से इन कामों का असर जाहिर नहीं होता। अलबत्ता जाहिरी अहंकार वगैरा दिल में आ जाते हैं।"

यह शब्द इतने स्पष्ट हैं कि अधिक व्याख्या आवश्यक नहीं है। धार्मिककर्म करने वालों की दशा स्वयं उनके मन की दशा का दर्पण बन रही हैं। उम्र बीत जाती है और परिणाम कुछ नहीं होता जो काम जीवन के प्रारम्भ से किया गया वे अंतिम जीवन तक चालू रहता हैं मगर शान्ति प्राप्ति नही, आत्म-ज्ञान नाम को नहीं। क्या ये गलत है? अपने इधर उधर देखो किसी के कहने पर न जाओ। राधास्वामी मत खण्डन करने का मार्ग नहीं है। न उसको किसी मजहब के खण्डन या झुठ-लाने से गरज है। यहां जो कुछ कहा जाता है केवल दृष्टि के ऊंचा करने, विचार को गति देने, बुद्धि को सूक्ष्म बनाने और मन को विस्तृत बनाने का उद्देश्य है ताकि समझने वाले समझें सोचने वाले सोचें और मात्म ज्ञान के जिज्ञासू आत्मिक बनने का यत्न करें।

मगर यहां एक रहस्य हैं जिसके जताये बिना आगे बढ़ना

ठीक नहीं है। वह यह है कि प्राचीन महापुरुषों ने जो धर्म की ये अवस्थाऐं चलाई थीं उनका भी उद्देश्य यही था कि किसी प्रकार साधारण जप तप करते रहने से मनुष्य समय पर अंतर मुखी बन जाये। ये केवल प्रारम्भिक लोगों के लिये हैं मगर लोग शुरू से अन्त तक उसी प्रारम्भिक दशा में बने रह गये। अन्तिम श्रेणी तक पहुंचने वाला एक भी नहीं होता है और न किसी प्रकार के कर्म-धर्म का परिणाम श्रेष्ठ फल वाला होता है। यह दशा सोचनीय है।

इसका कारण और कुछ नहीं है। ये मनुष्य का स्वभाव है कि वे प्राकृतिक रूप रे नवीनता प्रिय है। तुम नई-नई बात सोचो, नये-२ काम करो, नया वस्त्र पहनो, नया पदार्थ खाओ पीओ मन प्रसन्न होता रहेगा। लेकिन जब आदत पड़ जाती है तब फिर इनमें से कोई भी न प्रसन्नता देता है, न स्वादिष्ट प्रतीत होता है। जी भरा नहीं कि मन उनसे उकताया नहीं। सन्तुष्टता होने पर अरुचि हो जाती है और उन्नति रुक जाती है यही कारण है कि इन साधनों और क्रियाओं के करने वाले इनकी ओर से अन्त में घबरा जाते हैं। केवल स्वभाव और रिवाज की प्रथा के कारण या समाज के भय से उनमें अटके पड़े रहये हैं। किसी को एक प्याला शराब पिलाओ, उसमें मस्ती आ जायेगी, लेकिन कुछ दिनों के पश्चात जब वे साधारण सी हो जायेगी फिर मस्ती का आनन्द अपने आप जाता रहेगा। अब या तो वह उसक परिमाण को बढ़ाता चले या अन्य प्रकार के सरूर की ओर झुके तब काम निकले मगर ऐसा नहीं किया जाता। यद्यपि ये भद्दा उदाहरण है मगर हमारे मन्तव्य को हृदयांकित कराने में सफल समझा जायेगा। यह दशा सारे मजहबों की हो रही हैं। उन्नति के उपायों को कोई नहीं जानता और आन्तरिक भावों

(शेष अगले अंक में)

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम		श्रीमती सुधा मीतल
क —राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनांक १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. NO L—ALG.28

मिलने का पता : –
'मनुष्य बनो' कार्यालय
शिव भवन, लेखराज नगर
अलीगढ़—२०२००१ (उ०-प्र०)

अवैतनिक सहायक सम्पादक
महेशचन्द्र मीतल
सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक
श्रीमती सुधा मीतल

ग्राहक संख्या— 1769.

श्रीमान् Satyanarayan
H. no 1-8-213/1, Pedherghoot road
Secunderabad
AP

मुद्रक : श्रीमती सुधा मीतल, दातादयाल प्रिंटर्स, लेखराजनगर, अलीगढ़।